अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 10-Issue 3, (July-September 2022)

# मध्यकालीन भारतीय शहरीकरण और निर्गुण कवियों की सामाजिक आलोचना: कबीर के संदर्भ में एक अंतर्संबंधात्मक अध्ययन

पूर्णिमा चौबे।
स्नातक - लेडी श्री राम कॉलेज फॉर वूमेन (दिल्ली विश्वविद्यालय)
स्नातकोत्तर - कमला नेहरू कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय)

**सार**

मध्यकालीन भारत में शहरीकरण केवल नगरों की संख्या में वृद्धि नहीं था, बल्कि उत्पादन, व्यापार, श्रम-विभाजन, मौद्रीकरण और सामाजिक संबंधों के पुनर्गठन का एक व्यापक ऐतिहासिक प्रसंग था। इस बदलती आर्थिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने निर्गुण भक्ति को नई भाषावली, नई संवेदनशीलता और प्रतिवादी स्वर प्रदान किया। खासकर कबीर की कविता में बाजार, करघा, श्रम, बीज, धन, पाखंड और जाति-सम्बंधी बिंब बार-बार आते हैं; ये बिंब मध्यकालीन शहरी जीवन की जटिल आर्थिक-सांस्कृतिक संरचना से गहरे जुड़े हुए हैं। यह लेख तर्क करता है कि कबीर का काव्य न केवल आध्यात्मिक अभिव्यक्ति है, बल्कि अपने समय के सामाजिक-आर्थिक यथार्थ का तीक्ष्ण प्रतिवाद भी है।

## प्रस्तावना

कबीर की रचना—दोहे और पद—धर्म, समाज और अर्थव्यवस्था के जटिल अंतर्संबंधों का ऐतिहासिक दस्तावेज है। वे किसी वैचारिक शून्य में नहीं बोले, बल्कि नगरों के विस्तारित परिदृश्य में जीते हुए उन संसर्गों और संघर्षों का चिंतन कर रहे थे जिनसे कारीगर, व्यापारी और श्रमिक समुदाय प्रतिदिन जूझते थे। इसलिए कबीर का अध्ययन केवल साहित्यिक या आध्यात्मिक नहीं, बल्कि मध्यकालीन शहरीकरण के सामाजिक इतिहास के लिए भी आवश्यक है।

## शहरीकरण का ऐतिहासिक आधार

मध्यकालीन नगर अनेक स्रोतों से विकसित हुए—राजकीय प्रशासन, व्यापारिक मार्ग, धार्मिक तीर्थ और उत्पादन-केन्द्र। ग्रामीण अधिशेष का प्रवाह, इक्ता-राजविवस्था और बाजारों का सञ्जाल नगरों को आर्थिक केंद्र बनाता गया। यह विकास श्रम-विभाजन को जटिल बनाकर शिल्प-समुदायों को संगठित करता और नगर-आधारित प्रतिष्ठा तथा उपभोग के नए रूपों को जन्म देता। परिणामस्वरूप नगरों में समृद्ध वर्ग के साथ-साथ विशाल शहरी-दलित और कारीगर आबाद भी समाहित हो गई, जिससे सामाजिक असमानता और प्रतीकात्मक प्रतिस्पर्धा बढ़ी।

## निर्गुण काव्य की सामाजिक दृष्टि

निर्गुण भक्ति की विशिष्टता यह है कि वह बाह्य अनुष्ठान और जातिगत प्रतिष्ठा के स्थान पर व्यक्ति के आंतरिक सत्य और कर्म को महत्व देती है। कबीर और अन्य निर्गुण संतों ने जन्म, कर्मकांड और संपत्ति को सामाजिक श्रेष्ठता के आधार के रूप में स्वीकार करने वाले प्रथागत चक्रों की तीखी आलोचना की। शहरी संदर्भ में यह आलोचना अधिक प्रभावी बन गई क्योंकि नगर जीवन ने श्रम के नए अनुभव, सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक विषमताओं को उजागर किया, जिससे निर्गुण काव्य ने सामान्य जनता के लिए एक वैकल्पिक नैतिक भाषा का निर्माण किया।

## बाज़ार और रूपक

कबीर के काव्य में "बाज़ार" एक समृद्ध रूपक के रूप में बार-बार उभरता है। वह बाजार को केवल लेन-देन की जगह नहीं मानते, बल्कि इसे मानवीय इच्छाओं, स्वार्थ, करुणा और नैतिक परख की परीक्षा-भूमि बताते हैं। "कबिरा खड़ा बाजार में, मांगे सबकी खैर" जैसे पद बाजार की प्रवृत्तियों को नकारे बिना उसमें सार्वभौमिक कल्याण और पारस्परिक करुणा का प्रस्ताव रखते हैं। बाजार-रूपक से कबीर धन-लोलुपता, दिखावटी भक्ति और सामाजिक शोषण पर तीखा व्यंग्य करते हैं और एक ऐसी नैतिकता का सुझाव देते हैं जहाँ धन साधन हो न कि लक्ष्य।

## श्रम की गरिमा और कारीगर बिम्ब

कबीर का व्यक्तिगत और सामाजिक अनुभव जुलाहा-कुल से जुड़ा होने के कारण उनकी कविता में श्रम, करघा, सूत और बुनाई के रूपक जीवंतता से आते हैं। वे श्रम को केवल आर्थिक जीविका नहीं मानते; उसे आत्म-निर्माण, नैतिक मूल्यांकन और सामाजिक

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 10-Issue 3, (July-September 2022)

सम्मान का आधार बनाते हैं। कबीर की यह श्रम-संवेदी दृष्टि शहरीकरण के कारण विभक्त श्रम-संरचनाओं में काम करने वालों को एक नैतिक भाषा और गरिमा प्रदान करती है। फलतः उनका काव्य शिल्प-जीवन और उसके नैतिक आयामों का दस्तावेज बनता है।

कृषि रूपक और उत्पादन की नैतिकता

कबीर कृषि-रूपकों का उपयोग कर जीवन, साधना और उत्पादन के बीच संबंध स्पष्ट करते हैं। खेत, बीज और उपज के रूपक से वे परिश्रम, धैर्य और समय की महत्ता को रेखांकित करते हैं। इस संदर्भ में कबीर की कविता मध्यकालीन अर्थव्यवस्था के कृषि-आधार को भी प्रतिबिंबित करती है—जहाँ ग्रामीण अधिशेष का संचलन, उपज का केंद्रीकरण और शहरी मांग पारस्परिक रूप से जुड़ी हुई थीं।

शहरी असमानता और धार्मिक पाखंड का विघटन

शहरीकरण ने धार्मिक संस्थानों और सार्वजनिक प्रदर्शन की तीव्रता भी बढ़ाई। मंदिर, मठ, मस्जिद तथा बाजार के निकटता ने धर्म को अधिक सार्वजनिक, राजनीतिक और प्रदर्शनकारी बना दिया। कबीर इस सार्वजनिक धार्मिकता के भीतर निहित वर्गीय और प्रतीकात्मक स्वार्थों की आलोचना करते हैं। उनके लिए सच्चाई बाहरी अनुष्ठानों में न होकर कर्म, करुणा और आंतरिक सत्य में स्थित है। इस तरह उनकी वाणी नगर-जीवन की चमक और उसके भीतर छिपी विषमता का तीक्ष्ण खुलासा बनकर उभरती है।

भाषा, लोकता और सांस्कृतिक मध्यस्थता

कबीर की लोकभाषा का चयन—वह भाषा जो कारीगरों, व्यापारियों और सामान्य जन की वार्ताशैली थी—उनके सामाजिक संदर्भ का ही प्रतिबिम्ब है। यह भाषा-विकल्प शास्त्रपरक संस्कृत-आधारित प्रभुत्व को चुनौती देता है और जन-ज्ञान के प्रसार को संभव बनाता है। कबीर का भाषाई जनतंत्रीकरण उन्हें केवल कवि नहीं, सांस्कृतिक मध्यस्थ और श्रेणीगत संवाद का संवाहक बनाता है।

निर्गुण भक्ति को ऐतिहासिक संक्रमण का साहित्यिक प्रतिबिम्ब

निर्गुण भक्ति मध्यकालीन ऐतिहासिक संक्रमण—पुरानी सामंती-धार्मिक संरचनाओं और उभरते नगर-आधारित अर्थव्यवस्थाओं के बीच उत्पन्न तनाव—का साहित्यिक रूपांतरण है। कबीर इस संक्रमण के सबसे स्पष्ट साधक हैं क्योंकि वे मुक्ति के नैतिक और सामाजिक आयाम को जोडते हैं। उनके यहाँ मुक्ति व्यक्तिगत आत्म-उद्धार मात्र नहीं, समाज में समानता और नैतिकता की बहाली का मार्ग भी है।

सैद्धान्तिक निहितार्थ

कबीर के काव्य का विश्लेषण हमें मध्यकालीन शहरीकरण की सामाजिक परतें पढ़ने का अवसर देता है। उनके रूपक और आलोचनात्मक भाषा से इतिहासकार, अर्थशास्त्री और साहित्यिक आलोचक नगर-जीवन, श्रम-वर्ग की अनुभूति और धार्मिक-नैतिक प्रतिरोध के बीच के अंतर्संबंधों को समझ सकते हैं। कबीर की कविता दर्शाती है कि आर्थिक परिवर्तन सांस्कृतिक-नैतिक परिवर्तनों को जन्म देते हैं और साथ ही इनमें प्रतिरोध और वैकल्पिक मूल्य-प्रस्ताव भी उभरते हैं।

निष्कर्ष

मध्यकालीन शहरीकरण ने निर्गुण कवियों की सामाजिक आलोचना को संवेदी भाषा और ऐतिहासिक गहराई दी। कबीर की कविता उसी शहरी-आर्थिक परिदृश्य पर खड़ी होकर धर्म, जाति, धन, श्रम और नैतिकता के बीच के रिश्ते पर सवाल उठाती है और एक वैकल्पिक नैतिकता का प्रस्ताव रखती है जिसमें श्रम की गरिमा, करुणा और आंतरिक सत्य केंद्र में हैं। इसलिए कबीर को केवल आध्यात्मिक संत के रूप में पढ़ना सीमित रहेगा; उनका काव्य मध्यकालीन समाज की नई आर्थिक-सामाजिक चेतना का महत्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज भी है।

मध्यकालीन नगरों का विकास प्रशासन, व्यापार, शिल्प और धार्मिक केंद्रों के कारण हुआ।

**→ Irfan Habib, The Economic History of Medieval India: A Survey, (New Delhi: Academic Publications, 1999), 45–52.**

ग्रामीण अधिशेष का नगरों की ओर प्रवाह शहरी आबादी और शिल्प-उत्पादन को बढ़ाता था।

**→ Irfan Habib, The Agrarian System of Mughal India, (New York: Oxford University Press, 1999), 210–215.**

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 10-Issue 3, (July-September 2022)

कबीर के दोहों में "बाजार", "करघा", "सूत" और "कृषि-रूपक" आर्थिक और नैतिक दोनों स्तरों पर अर्थ देते हैं।
→ Charlotte Vaudeville, Kabīr, (New Delhi: Munshiram Manoharlal, 1993), 78–85.

निर्गुण भक्ति बाह्य पाखंड और जातिगत विभाजन के विरुद्ध एक समतामूलक नैतिकता प्रस्तुत करती है।
→ Karin Schomer & W. H. McLeod (eds.), The Sants: Studies in a Devotional Tradition of India, (Delhi: Rashtriya Vidyapeeth, 1987), 112–120.

कबीर का "कबिरा खड़ा बाजार में, मांगे सबकी खैर" दोहा बाजार-केन्द्रित नैतिक दृष्टि को व्यक्त करता है।
→ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर: व्यक्तित्व, साहित्य और दार्शनिक विचार, (बादली: वाणी प्रकाशन, 2005), 134.

कबीर की कविता में जुलाहा-जीवन, सूत, करघा, खेत और बीज के रूपक श्रम-संस्कृति से जुड़े हैं।
→ केदारनाथ द्विवेदी, कबीर और कबीर पंथ, (आगरा: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, 1998), 67–72.

मध्यकालीन शहरीकरण ने धार्मिक संस्थानों और उनके सार्वजनिक प्रदर्शन को तीव्र बनाया।
→ J. S. Grewal (ed.), The State and Society in Medieval India, (New Delhi: Oxford University Press, 2005), 89–94.

निर्गुण कविता मध्यकालीन ऐतिहासिक संक्रमण का साहित्यिक रूपांतरण है।
→ पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, हिंदी साहित्य के निर्गुण धारा, (नई दिल्ली: साहित्य अकादमी, 1982), 45–50.

Habib, Irfan. 1999. The Economic History of Medieval India: A Survey. New Delhi: Academic Publications.

Habib, Irfan. 1999. The Agrarian System of Mughal India. New York: Oxford University Press.

Vaudeville, Charlotte. 1993. Kabīr. New Delhi: Munshiram Manoharlal.

Schomer, Karin, and W. H. McLeod, eds. 1987. The Sants: Studies in a Devotional Tradition of India. Delhi: Rashtriya Vidyapeeth.

द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद. 2005. कबीर: व्यक्तित्व, साहित्य और दार्शनिक विचार. बादली: वाणी प्रकाशन.

द्विवेदी, केदारनाथ. 1998. कबीर और कबीर पंथ. आगरा: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान.

Grewal, J. S., ed. 2005. The State and Society in Medieval India. New Delhi: Oxford University Press.

बड़थ्वाल, पीताम्बरदत्त. 1982. हिंदी साहित्य के निर्गुण धारा. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी.

Raychaudhuri, Tapan, ed. 1993. The Cambridge Economic History of India, Vol. I. Cambridge: Cambridge University Press.

Chaturvedi, Parshuram. 1975. उत्तरी भारत की संत परंपरा. प्रतिभा प्रकाशन.

भारती, धर्मवीर. 2001. कबीर: नई सदी में. राजपुत्र प्रकाशन.